

स वै पंसां परो धर्मो यतो भक्तिरक्षोक्ते ।

धर्मः स्वतन्त्रितः पुनां विजयकम् कथामुः ।



अहेतुक्यप्रतिहता यथात्मा सुप्रसीदति ॥

गोलपालयै वैष्णवी नवि अम एव लि श्वेतम् ॥

मवोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका शेष रीति से पालन करते जीव निरन्तर । अक्ति अधोक्षजकी अहेतुकी विजयकून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो अम व्यर्थ सभी केवल बोधनकर ॥

वर्ष १६ }

गौराब्द ४८८, मास-विष्णु ६, वार-कारणो दशायी
बृहस्पतिवार, ३० फाल्गुन, सम्वत् २०३०, १४ मार्च १९७४

{ संख्या १०

मार्च १९७४

श्रीब्रह्माकृतं श्रीश्रीगर्भोदशायी-स्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत ३।१।१०-१७)

अहन्यापृतात्तकरणा निशि निःशयाना नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्रा ।

देवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव युष्मतप्रसंगविमुखा इह संसरन्ति ॥१॥

(बदि कहा जाय कि अविवेकी व्यक्तियोंके लिए सप्तार क्लेश सम्भव हो सकता है, विवेकी व्यक्ति तो मुक्त है। उनके लिए भाँतकी आवश्यकता क्या है? इसलिए कह रहे हैं)—

हे देव! कृष्ण लोग भी अपके शशरा-कीरन रूप प्रसंगसे विमुख होनेपर इस संसारमें गमनागमन करते रहते हैं। दिनके समय ऐसे व्यक्तियोंकी इन्द्रियाँ भगवदितर कार्योंमें व्यस्त रहकर अत्यन्त क्लेश प्राप्त करती हैं। रात्रिमें भी उनके विषयसुखका लेशमात्र भी नहीं रहता। क्योंकि वे लोग बाहरी इन्द्रिय-कार्योंसे निवृत्त होकर नींद जानेपर भी नाना असद-विषयोंमें मनके दौड़नेके कारण स्वप्न-दशान

द्वारा प्रति क्षण-क्षण उनकी निद्रा टूटती रहती है। वे लोग अर्थके लिए भी चेष्टा नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी ऐसी चेष्टाएँ देवद्वारा सब समय ही पराभूत होती रहती हैं ॥१॥

त्वं भक्तियोगपरिभावितहृत्सरोज आसुसे श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।
यद्यद्विषया त उरुगाय विभावयन्ति ततत्वपुः प्रणयसे सदनुप्रहाय ॥२॥

हे नाथ ! गुरुमुखसे आपकी कथा सुननेके पश्चात् सभी व्यक्ति आपकी सेवा पानेका उपाय जान सकते हैं। आप आपके निजजनोंके भक्तिद्वारा शुद्ध हुए हृदयकमलमें विश्राम करते हैं। हे उत्तमःश्रोक ! भक्तलोग अपनी अपनी (पिददेह भावगत) भावनाके अनुसार जिन सभी नित्य स्वरूपोंकी विभावना करते हैं, आप उनके प्रति अनुग्रह करनेके लिए उन उन स्वरूपोंको प्रकट किया करते हैं ॥२॥

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारं राराधितः सुरगणैहृदि बद्धकामैः ।
यत् सर्वभूतदययासदलभ्ययंको नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥३॥

हे प्रभो ! आप सभी प्राणियोंके भीतर अन्तर्यामी रूपसे अवस्थित हैं एवं आप सभीके एकमात्र बन्धु हैं। आप अभक्तोंके लिए अप्राप्य एवं सभी भूतोंके प्रति दयाशील होनेके कारण आप सभीके प्रति प्रसन्न होते हैं, किन्तु सकाम देवता लोग नाना प्रकारके उपचारद्वारा उपासना कर भी आपकी प्रसन्नता प्राप्त नहीं कर सकते ॥३॥

पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्वैर्दानेन चोपतपसा परिचर्यया च ।
आराधनं भगवतस्तद्व सत्कियाथो धर्मोऽपितः कहिचित् ध्रियते न यत्र ॥४॥

इमनिए सभी पुरुषोंके नाना प्रकारके श्रोतस्मात् कर्म, दान, कठोर तपस्या एवं परिचर्या द्वारा आपकी जो आराधना हो, वही सभी कर्मों का श्रेष्ठ फल है, क्योंकि आपके प्रति अपित धर्मका कदापि विनाश नहीं होता ॥४॥

शश्वत् स्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै ।
विश्वोद्भूवस्थितिलयेषु निमित्तलोलारासाय ते नम इदं चक्रमेश्वराय ॥५॥

हे भगवन् ! आपके स्वरूपन्यैतन्यके प्रकाशद्वारा ही सर्वदा भेदभ्रमका निवारण होता है। आप विद्याशक्तिके आश्रय तत्त्व हैं। अतएव आप ही परतत्त्व हैं। आपको नमस्कार करता हूँ। विश्वकी रचना, स्थिति एवं लयके निमित्त कारण रूपसे जिस (बहिरङ्गा) मायाका विनाश है, उस मायाके साथ आप (ईक्षणादि द्वारा) लीला किया करते हैं। आप ईश्वर अर्थात् मायाके नियन्ता हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं ॥५॥

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
तेऽनेकजन्मशमलं सहसैव हित्वा सयाभ्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥६॥

जो व्यक्ति जिनके देवकीनन्दन आदि अवतारसूचक, सर्वज्ञ, भक्तवत्सल आदि गुणवाचक एवं गोवंदनधारी, कंसारि आदि लीलाके अनुरूप नामोंका प्राणत्याग करते समय भी विवश होकर केवल उच्चारण करने मात्रसे ही शीघ्र ही बहुत जन्मोंके संचित पापोंसे मुक्त होकर कपटता छ्वंसकारी सञ्चिदानन्दस्वरूप आप भगवान्‌को प्राप्त करते हैं, मैं (ब्रह्मा) उन जन्मादि रहित आपके शरणागत होना हूँ ॥६॥

यो वा अहश्च गिरिशश्च विभुः स्वयश्च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ।
भित्वा त्रिपावदवृद्ध एक उरुप्ररोहस्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥७॥

जो एकमात्र सृष्टिस्थिति एवं लयके कारण हैं, मैं (ब्रह्मा), स्वयं आप विष्णुरूपसे एवं शिव—ये तीनों पाद जिनके स्कन्ध हैं, मरीचि आदि मुनि एवं मनु आदि जिनके शाखा-प्रशाखा रूपसे विराजमान हैं, जो स्वयं ही जिस प्रकृतिके अधिष्ठान हैं, उसी प्रधानको गुणत्य (त , राजः एवं तम) रूपसे विभाग कर जो वृद्धि पा रहे हैं, उन भुवनाकार वृक्षस्वरूप आप भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७॥

लोको विकर्मनिरतः कृशते प्रमत्तः कर्मण्यं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यशिष्ठनस्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥८॥

हे विभो ! सभी व्यक्ति जब तक साक्षात् आपके कहे गये (पञ्चरात्रोक्त) भगवदर्चन रूप अपने हितके प्रति अमनोयोगी होकर शास्त्रविरुद्ध कर्मोंमें लगे रहते हैं, तब तक ही बलवान् काल उनकी परमायुका शीघ्र छेदन करता रहता है। ऐसे कालस्वरूप आपको नमस्कार है ॥८॥



परमार्थकी आलोचना

मैं श्रीगुरुपादपद्मों में सर्वप्रथम प्रणाम करता हूँ। हम जब श्रीगुरुपादपद्मों विक्रीत पशुविशेष हैं, तब हम क्यों दूसरोंकी बात सुनना चाहते हैं, इस सम्बन्धमें कोई प्रश्न कर सकते हैं। इसका उत्तर यही है कि जिस प्रकार से सात्वत व्यक्ति असात्वत या असत् शास्त्रोंके द्वारा भी अपने सत् वाक्योंकी दृढ़ताका स्थापन करनेके लिए बहुतसे अनुकूल विषयोंका उदाहर करते हैं या व्यतिरेक या असाक्षात् रूपमें उनकी आलोचना करते हैं, उसी प्रकार हम भी दूसरोंके निकटसे बहुत सी बातें सुनकर श्रौत वास्तव सत्यमें अधिकतर दृढ़ता शास्त्र करेंगे। हम भाग्यदोषके कारण आध्यात्मिक या स्थूल ज्ञानियोंकी बहुतसी बातें न सुनकर रह सकते हैं, किन्तु उनकी वे सभी बातें सुनकर हो सकता है कि हमारे वाक्योंमें और भी दृढ़ता आये। उनके निकटसे सुनकर मैं अभिज्ञतावाद का या जागतिक पण्डित हो जाऊँगा, ऐसी दुराशा नहीं रखता। जागतिक पाण्डित्य प्राप्त करनेके लिए दृश्य चेष्टा नहीं करूँगा। यदि प्राप्तिविक बातोंमें पाण्डित्यकी आवश्यकता हो, तो उस कार्यमें उनके ऊपर भार दिया जा सकता है। श्रीगुरुपादपद्मके श्रीमुखसे हमने श्रवण किया है—

लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने ।
हरिसेवानुकूलेव सा कार्या भक्तिमिच्छता ॥

अर्थात् लौकिक, वैदिक या, किसी भी प्रकारका कार्यं हरिसेवाकी अनुकूलताके लिए करनेपर वह 'भक्ति' नाम प्राप्त करता है।

हम जब भगवद्गुरुके सेवक हैं, कर्मी-ज्ञानी आदिके जब सेवक नहीं हैं, हम जब हरिभक्तोंके पादुका बहनकारी हैं, तब अन्याभिलाषी, कर्मी, ज्ञानी सम्प्रदायके साथ हमारा कोई विरोध नहीं है, जय-पराजयकी भी कोई बात नहीं है। तब यदि हमारे आवश्यक परमार्थ-दिवयमें कोई हमें सन्धान दे सकें, उनके भावके द्वारा यदि हमारी कुछ सहायता कर सकें, इसलए उनके निकट कुछ प्रश्न रखे गये थे। किन्तु प्रश्नोंकी भाषा वे समझ नहीं पाये। हमने किस लिए प्रश्न किया किया है, वह बात अधिकांश स्थलोंमें ही वे समझ नहीं पाये। अनेक स्थलमें ही उनके कार्यकी उपयोगी बातें हमारे कार्यमें नहीं आये। कोई-कोई प्रश्न के उत्तर देनेमें असमर्थ होकर नान; प्रकारसे उनकी दुर्बलताका प्रकाश कर डाले हैं। हमने उन सभी बातोंके प्रति बहरे बनना ही उचित समझा है। कुछ लोगोंने कर्मवीरत्वके लिए यत्न किया था, कुछ लोगोंने अन्याभिलाषके लिए यत्न किया था, कुछ लोगोंने ब्रह्मानुसंधान के लिए यत्न किया था, कुछ लोगोंने रूपसिद्धिके लिए यत्न किया था। किन्तु हम यह जानते हैं कि धर्म, वर्थ, काम या

मोक्षकी उपासना क्रूरनामात्र है अर्थात् वे सभी केवल मेरी अगस्त्वार्थपरताका परिचय प्रदान करते हैं। वह मुक्त आत्मा या liberated soul की बात नहीं है। वह केवल बद्ध आत्मा या conditioned soul के प्रलापकी बात है। श्रीगोराज्ञ महाप्रभुने एक समय भारतके नाना स्थानमें भ्रमण करते करते उपदेश किया था— जारे देखो, तारे कहो कृष्ण उपदेश। आमार आज्ञाय गुरु हइया तार' एइ देश ॥

उस समय प्रश्न उठा था कि हम यदि स्वयं सिद्ध न हो, तो किस प्रकार परमार्थकी आलोचना करेंगे? तब उन्होंने कहा था—

उहाते ना बाधिबे तोमार विषय-तरङ्ग ।
पुनररपि एइ ठाँड़ पावे मोर सङ्ग ॥

भगवद्गीताके लिए यस्तु करो, जहाँ बेठे हो, वहीसे चेष्टा करो। जिस जिस देशमें जिस कालमें, जिस किसी पात्रमें क्यों न हो, भगवद्गीताको पानेका प्रयास करा। श्रीचेतन्य महाप्रभुकी आज्ञा पालन करनेके लिए श्रीगुरुपादपद्मसे जो सभी बातें हमने सुनी हैं, उन सभी बातोंकी आलोचना करने को छोड़कर और कोई दूसरा उपाय नहीं है। भगवद्गीतासेवकका एकमात्र कार्य है भगवत्कार्य करनेके कौशलकी दिसों दिन क्रमशः वृद्धि करना। कृष्णके प्रति हमारी मति क्रमशः वृद्धि प्राप्त हो, यही हम लोगोंके लिए प्राथंनीय है। हम धन, जन आदि कुछ भी नहीं चाहते या जन्मान्तर रहित होना भी नहीं चाहते। जगतमें अन्याभिलाषके वशीभूत होकर—धर्म अर्थ-काम-मोक्षके प्रार्थी होकर नाना लोग नाना देवताओंकी आराधना करते रहते हैं।

हम महादेवके सामने उपस्थित होने पर कहते हैं—

बन्दावनावनिषते जय सोम सोम-
मौले सनन्दन-सनातन नारदेव्य ।
गोपेश्वर ब्रजविलासियुगांत्रिपद्मे
प्रीति प्रयच्छ नितरां निरुपाधिकां मे ॥

अर्थात् हे बन्दावन भूमिके रक्षक ! हे शिव ! हे चन्द्रमौल ! हे सनन्दन-सनातन-नारद आदिके पूज्य ! हे गोपेश्वर ! आप कृपा कर ब्रजविलासी श्रीकृष्णबन्द्रके पादपद्मों में निरुपाधिक प्रीति मुझे प्रदान करें।

जब कात्यायनीके निकट जाते हैं, तब कहते हैं—

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पर्ति ते कुरुते नमः ॥

अर्थात् हे कात्यायनि ! हे महामाये ! हे महायोगिनि ! हे अधीश्वरि ! आपको हम प्रणाम करते हैं। हे देवि ! कृपा कर आप नन्दगोपके पुत्र श्रीकृष्णको हमारे पति बनाये।

ब्याधि का दूरीकरण हो या रोग, रोगी दोनों ही पूर्णतः विनष्ट होकर मुक्ति प्राप्त करें—तेरी प्राथंना हम नहीं करते। हम उनके निकट उपस्थित होकर कहते हैं—“कृष्णमें मति हो” कहकर आप लोग हमें आशीर्वाद प्रदान करें। जगत्के व्यक्ति कृष्णोत्तर विषयमें विषयी होनेके लिए प्राथंना करते हैं। किन्तु हमारे श्रीगुरुपादपद्मका उपदेश है—कृष्ण ही एकमात्र विषय है। यदि अनात्म अनुभूतिके बश होकर हमारे कृष्णानुसन्धान कार्यमें बाधा पहुँचे, तो उस बाधाके हाथसे मुक्ति पानेके

लिए आलोचना हो, इसलिए हमारा प्रश्न है। दूसरे के जेव में हाथ देना—दूसरोंकी असुविधा करना—ऐसी नीच प्रवृत्ति हमें नहीं है। जो व्यक्ति काम-क्रोध आदिकी सेवामें हचि सम्पन्न है, वे दूसरे प्रकार से विचार कर सकते हैं। किन्तु हमने पूर्वगुरु श्रील माधवेन्द्रपुरीपादके निकट श्रवण किया है—

कामादीनां कति न क्रतिधा पालिता दुनिदेशा-
स्तेषां जाता मयि न करुणा न त्रपा नोपशांतिः।
उत्सृज्यैतानथ यदुपते साम्प्रतं लब्धवृद्धिः
त्वामायातः शरणमभयं मां नियुक्षात्मदास्ये ॥

अर्थात् मैंने कामादि छः प्रभुओंके दुष्ट आदेशोंको कितने प्रकारमें एवं कितने भय पालन किया है। किन्तु न उनकी मेरी प्रति करुणा ही हुई और न मुझे शान्ति ही मिली। अतएव हे त्रिभुवनपालक यदुपते ! सदवृद्धि प्राप्त कर उनका परित्याग करते हुए आपके अभय चरणोंमें मैंने शरण ग्रहण की है। आप कृपा कर मुझे अपने दास्यमें नियुक्त करें।

हम भिक्षुक हैं, किन्तु इन्द्रियभोगकी कामनाके भिक्षुक नहीं हैं। हमारी भिक्षा है—सभी साधु व्यक्ति श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपा का विचार करें, ऐसा होनेपर परम चमत्कार प्राप्त करेंगे। हमारी प्रार्थना है—

दन्ते निधाय तृणकं पदयोनिपत्य
कृत्वा च काकुशतमेतदहं ब्रवोमि ।
हे साधवः! सकलमेव विहाय दूरात्-
चैतन्यचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम् ॥

अर्थात् हे साधकों ! दांतोंमें तृण धारण कर चरणोंमें घिरकर मैंकड़ों काकुवाद कर यह

प्रार्थना करता हूँ—आप लोग और सभी चेष्टाओंका परित्यागकर श्रीचैतन्यचन्द्रके चरणोंमें अनुराग प्रकाश करें।

श्रीचैतन्य महाप्रभुने विशेष बात कही है—मानवोंके लिए वासनाके हाथोंसे मुक्त होने के सरल उपाय बतलाए हैं। वह और कुछ नहीं हैं, भगवद्गुरुका आश्रय ग्रहण करना ही है। उन्होंने कहा है—

निञ्जिकचनस्य भगवद्गुजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोम्बन्वसागरस्य ।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषितांच
हा हंत हंत विषभक्षणतोऽप्यसाधु ॥

विष खाकर मर जाना उत्तम है, तथापि कृष्णेतर विषयी या विषयका संग करना कर्त्तव्य नहीं है। हरिभजनका आरम्भ कर जो व्यक्ति विषयमें आसक्त हो जाय, उसका सर्वनाश हो गया। भरत—जो भारतवर्षके राजा हुए थे, उन्होंने पहले बहुत साधना एवं तपस्या की थी, हरिभजनके पथमें अग्रमर हुए थे। किन्तु उनमें भी एह साधारण कृष्णेतर विषय की अभिनाशा—एक सतकमीं बननेकी इच्छा—जीवके प्रति इया करनेके बदले जीव-सेवा (?) करनेकी एक तुच्छ स्पृहा उद्दित होनेके कारण उनको भी हरिणशिशु बनकर जन्म लेना पड़ा था। अतएव हमारे गुरुपादपद्मने आदेश दिया है—कृष्णसेवाको छोड़कर और कोई कर्त्तव्य नहीं है। ‘कृष्ण मतिरस्तु’ ही एकमात्र आशीर्वाद है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जब श्रीअद्वैताचार्य प्रभुकी श्रीअद्वैतवाद ग्रहण—लीलाका खण्डन

करनेके लिए श्रीधाम मायापुरसे श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ ललितपुर होकर शान्तिपुर जा रहे थे, उस समय ललितपुरका एक पतित संन्यासी विशेषके साथ उनका माक्षात्कार हुआ। लीलामय दोनों प्रभुओंने किसी एक उद्देश्यसे उस पतित संन्यासीके द्वारपर आनेपर उस संन्यासीने श्रीमन्महाप्रभुको बालक समझ-आशीर्वाद दिया था—

‘धन, वंश, सूबिबाह, हउक विद्यालाभ।’

श्रीमन्महाप्रभुजीने संन्यासीका ऐसा आशीर्वाद अवणकर कहा—यह आशीर्वाद नहीं अभिशाप है। ‘कृष्णकी कृपा प्राप्त हो’—ऐसा आशीर्वाद ही यथार्थ आशीर्वाद है। पतित संन्यासीने वह बात सुनकर कहा कि उन्होंने जिस बातको पहले सुना था, आज प्रत्यक्ष उसका निदर्शन प्राप्त हुआ। और भी कहा—“आजकल लोगोंको अच्छी बात कहनेपर वे ऐसे कहनेवालेको लाठीसे मारनेके लिए दौड़ते हैं। इस ब्राह्मणकुमारका भी मैं ऐसा आचरण देख रहा हूँ। कहाँ मैंने इसे परम सन्तोषसे ‘धन जन लक्ष्मी प्राप्त हो’ ऐसा वर दिया, इसका उपकार करने गया और इस व्यक्तिने उस उपकारको अपकार समझकर मुझे दोषारोप करनेके लिए उद्यत हुआ है।” तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने एक प्रवीण व्यक्ति एवं अभिभावककी तरह भाव दिखलाकर उस दारी (पत्नी ग्रहणकारी) संन्यासीसे कहा—“आपके लिए इस बालकके साथ विचार करने की आवश्यकता नहीं है। मैं आपकी महिमा को समझ गया हूँ। मेरी ओर देखते हुए इसका कोई दोष नहीं लैंगे।”

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी बातमें मन्तुष्ट होकर उस दारी संन्यासीने श्रीनित्यानन्द प्रभुको कुछ भोजन कराना चाहा। पतितपावन श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीप्रह्लादप्रभु गंगाजीमें स्नान कर संन्यासीके घरमें फलाहार करने लगे। ऐसे समयमें वह दारी संन्यासी श्रीनित्यानन्द प्रभुको ‘आनन्द’ प्रदण करनेके लिए बार-बार सकेत करने लगा। उस संन्यासी की पत्नीने भोजन समयमें अधिविष्योंको ऐसे विरक्त करनेके लिए मना किया। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुसे संन्यासीके ‘आनन्द’ शब्दका तात्पर्य पूछा। श्रीनित्यानन्द प्रभु सभी प्रकारके व्यक्तियोंके आचरणको जानते ही थे। उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुको बतलाया कि ‘आनन्द’ शब्दद्वारा संन्यासी मदया सुराको कह रहा है। यह बात सुननेके साथ साथ ‘विष्णु-विष्णु’ कहते हुए श्रीमन्महाप्रभुने तुरंत भोजन परित्याग कर आचरण किया एवं अति शीघ्र श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुके साथ गंगामें छलांग मारकर कूद पड़े। इस लीलाके द्वारा उन्होंने दुःख-वजनकी शिक्षा दी। भुक्तिकामी की अपेक्षा मुक्तिकामी निर्भेद ब्रह्मानुसवानकारी अधिकतर कपटी होनेके कारण मञ्जुलकामी व्यक्तियोंको ऐसे ज्ञानियोंका संग सब प्रकारसे वजन करनेका उपदेश किया है।

उवंशीने जब देखा कि उसका शुद्ध अपस्वार्थ पूरण हो गया है, तब वह चन्द्र-वंशीय पुरुरवा या ऐलका परित्याग कर चली गई। उस समय वे राजा उवंशीकी निष्ठुरता जानकर निर्बेदको प्राप्त हुए। इस प्रसंगमें भगवान् कृष्णने उद्घवजीसे कहा है—

ततो दुःसंगमुत्सूज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ।
सन्तः एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासञ्ज्ञमुक्तिभिः॥

अर्थात् बुद्धिमान् व्यक्ति दुःसंगका परित्याग कर साधुओंका संग करेंगे । क्योंकि साधु व्यक्ति अपने उपदेशोंद्वारा उनके चित्तका क्लेश दूर कर देते हैं ।

साधुओंका एकमात्र कर्तव्य है कि जीव के चित्तमें जो सभी दुष्प्रवृत्तियाँ हैं, उनका छोड़न करना । यही साधुओंकी स्वाभाविक अहैतुकी वांछा है । द्विहृदयता प्रकाश कर जगत्के व्यक्ति बाहर एक प्रकारकी बात एवं भीतरमें दूसरे प्रकारकी बातका पोषण करते करते हैं । जो व्यक्ति द्विहृदयता प्रकाश न कर सरल होना चाहते हैं, सरल भावसे आत्मनाकी चर्त्ति याजन करना चाहते हैं, उन्हें ये सभी दो जिह्वायुक्त व्यक्ति 'साम्प्रदायिक', 'पक्षपाती', 'अन्धविश्वासी' आदि कहा करते हैं ।

एक समय श्रील नरोत्तम ठाकुरजीने उत्तर राढ़ीय कायस्थ कुलमें आविभूत होकर लीला प्रकाश किया था । बहुतसे उत्तम गुण-युक्त व्यक्तियोंके निकट सत्य कथा उन्होंने कही थी, उन्हें असद व्यक्तियोंके आक्रमणका पात्र होना पड़ा था । मरमर प्रकृतिवाले कुछ जड़ीय भावापन्न अविचारक व्यक्ति ऐसा कहने लगे कि श्रील नरोत्तम ठाकुर कायस्थकुलमें जन्म ग्रहण कर क्यों ब्राह्मण-मन्तानोंको उपदेश देकर शिष्य कर रहे हैं? यह सुनकर श्रील नरोत्तम ठाकुर कहने लगे—“यदि ऐसा ही हो, तो सम्पूर्णरूपसे निवृत हो जाऊँगा ।” इस पर उनके शिष्य श्रीरामकृष्ण भट्टाचार्य एवं श्री

गंगानारायण चक्रवर्तीने कहा—“ऐसा हो, तो जगत् रसातलमें चला जाएगा । जगतमें नास्तिक, पाषण्ड व्यक्तियोंकी संस्था और भी बढ़ जाएगी । यह कहकर उनमें से एक तो ताम्बूली एवं दूसरे कुम्हारका वेश बनाकर चल पड़े । जब विदेशी सम्प्रदायकी गर्वित पण्डित-मण्डलीने व्यक्ति श्रील ठ कुर नरोत्तम-जीको विचारमें परास्त करनेके लिए खेतुरी प्राममें पहुँचे, तब वे लोग अपने आहारकी व्यवस्था करनेके लिए बाजारमें घड़ा खरीदने के लिए कुम्हारके दूकानमें गये । उस समय कुम्हार वेणुधारी वैष्णव उन लोगोंके साथ संस्कृत भाषामें बातचीत करने लगे । उसके पश्चात् वे लोग पानकी दूकानमें पान खरीदने गये, तब वे ताम्बूली वेणुधारी वैष्णव उन पण्डितोंके माय संस्कृत भाषामें बात करने लगे । यह सब कुछ देख सुनकर गर्वित पण्डित लोग मन ही मन सोचने लगे कि जिम देशमें कुम्हार-ताम्बूली तक संस्कृतमें बातचीत कर सकते हैं, देशके सर्वप्रधान व्यक्ति श्रील नरोत्तम ठाकुर किनने बड़े पन्दित हो सकते हैं, उसका अनुमान भी किया नहीं जा सकता । अतएव उनके पास जाकर हमारे सम्मानको खोनेके बदलेमें हमारे लिए यहींसे विदा हो जाना ही श्रेयस्कर है । ऐसा सोचकर वे लोग बहींसे लौट गए । जो व्यक्ति सत्यका आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हें चिरकाल ही ऐसे आक्रमणका पाव बनना पड़ता है ।

साधारण विवेकरहित विचार या साधारण विवेकयुक्त विचार एवं सत्य एक नहीं हैं । बहुतसे व्यक्ति साधारण बुद्धि

(common sense) को 'सत्य' समझते हैं। साधारण बुद्धिके साथ जिसका मेल नहीं होता, उसे वे लोग सत्यके पदसे विच्छयूत करना चाहते हैं। किन्तु ऐसी साधारण बुद्धि किनकी है? भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्ति, करणापाठसे विनिमूर्त्ति विमुक्त आत्माकी सहज बुद्धि या भ्रम-प्रमादादियुक्त, परिवर्तीनशील मनकी अभिज्ञतावादसे उत्पन्न साधारण-बुद्धि? भ्रम-प्रमादयुक्त जन-साधारणकी साधारण बुद्धि केवल मनोधर्ममात्र है। उसमें आपेक्षिक या सामयिक सत्यका एक आभास रह सकता है, किन्तु वह वास्तव सत्य नहीं है। जागतिक व्यक्तियोंकी रज़ा: एवं तमो गुणसे ताड़ित बुद्धि अविमिश्व विणुद्ध सत्त्वकी बात समझ नहीं सकती। एक व्यक्तित पापस खा रहा है, और उस ममय यदि कोई व्यक्ति वहाँ आकर कहे मेरे पास चूना-रेत है, आप उन्हें परमानन्द या खीरमें मिलाकर उसकी पूरणता सम्पादन कर लीजिए। ऐसा करनेपर मिठान्न खानेका फल पाया नहीं जा सकता, उसका आस्वादन नष्ट हो जाता है, मुखमें चूना-कड़ूड़ आदि लगकर गलेको जला देते हैं, गलेको बन्ध कर देते हैं, उससे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। ठीक उसी प्रकार परम निरपेक्षा, स्वतन्त्रता, त्रिगुदा, निर्गुणा भक्तिके साथ प्राकृत गुणजात जगतके अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान, योगादि चेष्टाको यदि कोई मिलाकर कहे कि भक्तिकी असम्पूरणताको ऐसा कर आप सम्पूरण कर लें, तो ऐसा परामर्श भी मिष्टान्न विजातीय चूना-रेत उसमें मिलानेकी तरह है। कर्म, ज्ञान, योग आदि बद्धजीवोंकी चेष्टाएँ हैं, वे सभी देह

एवं मनोधर्मके भीतर हैं। किन्तु भक्ति आत्मा की वृत्ति या आत्मधर्म है, वह परम मृत्युविक्षिप्तिको चेष्टा है। अतएव कर्म-ज्ञान योग आदि प्रापञ्चिक विजातीय अनात्मचेष्टापरमानन्दवस्तुका भक्तिमें मिलावट नहीं हो सकता। तब कर्म-ज्ञान आदि जब भक्तिकी अधीनता स्वीकार कर चलें, उस ममय थोड़े बहुत परिमाणमें वह कर्ममिश्वा एवं ज्ञानमिश्वा भक्ति पराभक्तिके पथमें अग्रसर होनेका आनुकूल्य प्रदान कर मिलती है। पराभक्तिप्राप्त होने पर मिश्रभाव नहीं रहता, यही निष्टिलिखित श्रोक्तमें कहा गया है—

सुरवे विहिता शास्त्रे हरिमुद्दिश्य या क्रिया ।
संब भक्तिरिति प्रोक्ता: तथा भक्तिः परा भवेत्॥

अर्थात् है देवर्ये ! भगवान् हरिको उद्देश्य कर शास्त्रोंमें जो क्रिया बतलाई गई है, साधु लोग उसे ही वैधी भक्ति कहते हैं। इस वैधी भक्तिका पालन करते करते प्रेमभक्ति प्राप्त होती है।

हमने ऐसे विचारसे ही मनीषी एवं बुद्धिमान् व्यक्तियोंके निकट कुछ प्रश्न दिया था। हमने जहाँ तहाँ जिस किसीको ये प्रश्न नहीं कि ए या खीरके साथ गन्दगी मिलानेकी अभिलाष से प्रश्न नहीं दिये। अविमिश्व सत्य या निष्कपट मत्य जगतमें प्रकाशित हो, ऐसा अभिलाष लेकर ही हमने कुछ प्रश्नोंका उत्तर चाहा था, किन्तु काम-कोश-लोभके वशीभूत होकर कुछ लोगोंने ऐसा अजिष्ठाचारपूरण व्यवहार दिखलाया है कि उनके व्यवहारसे ही उनके स्वभावको उन लोगोंने प्रकाश कर डाला है।

हम लोग कर्मविलम्बीका संग करना नहीं चाहते। जो व्यक्ति बाहरी जगतके अभिज्ञता-वाद या मनोवर्मनको नेकर अभ्युदयके हिसानय में चढ़ना चाहते हैं, हम लोग ऐसे आरोहवादी प्राकृत ज्ञानीका संग करना नहीं चाहते। अतएव जगद्गुरु ठाकुर श्रील भक्तिविनोदने कहा है—

प्रतीप जनेरे, आसिते न। दिव,
राखिब गडेर पारे ।

अर्थात् विरोधी व्यक्तियोंको नहीं स्थान देंगा, उन्हें साधुसंगमे दूर रखूँगा। यही हमारे गुह्यदेवका उपदेश है। उद्दर-उपस्थ वेगवाले व्यक्तिको हम लोग नहीं चाहते। वे लोग वास्तविक निष्कपट अनुसम्बित्सु नहीं हैं। दो जीभवाले व्यक्ति, जो लोग बाहरसे कुछ प्रकाश करते हैं एवं भीतरमें और ही कुछ रखते हैं, ऐसी श्रेणीके लोगोंसे हमारा प्रयोजन सिद्ध होगा? नित्य आत्माका अनुभव जिन्हें हो चुका है, जो व्यक्ति भणवानुके सेवक है वे व्यक्ति जिस धर्मके अवलम्बी क्यों नहीं हो, उनके निकट हमारे प्रश्नोंका उत्तर पा सकेंगे। हमारे पूजनीय श्रीगुरुपादपद्मने जो सभी बातें हमें बतलायी हैं, दो जीभवाले व्यक्ति वे बातें नहीं सुनेंगे—वे लोग कदापि सेवोन्मुख कान नहीं देंगे। हमारे प्रश्नोंको बाहरी व्यक्ति समझ नहीं पाये, श्रीमद्भागवत की तरह भागवत जीवन जिनका नहीं है, वे लोग समझ नहीं पाए।

हम जो सभी बातें साधुओंको जानने नहीं देते, गुप्त रूपसे जो सभी बातें रख देते हैं,

यथार्थ साधु उन सभी बातोंको हमारे भीतरसे निकालकर उनके ऊपर अस्त्र प्रयोग करते हैं। 'साधु' का कार्य ही यही है कि वे एक खड़ग हाथमें लेकर बलिवेदीके निकट लड़े हुए हैं—मनुष्योंकी बकरेकी तरह जो वासना है, उसी वासनाका बलि देनेके लिए लड़े हुए हैं, परुष (कठोर)वाक्य रूप तीक्षण खड़गके द्वारा। साधु यदि मेरे खुशामदकोर हो, तो वे मेरे बमंगलकारी हैं या मेरे शत्रु हैं। ऐसे होनेपर तो हम लोगोंने प्रेयः पथ ग्रहण कर लिया, श्रेयःको नहीं चाहा।

जिनका भागवत-जीवन नहीं है, उनके निकट भागवत सुनना उचित नहीं है। अपने अपेक्षा श्रेष्ठ साधुका संग करना ही कर्त्तव्य है—'साधुसंगः स्वतो वरे।'

भागवतजीवन किनका है, यही बात इस श्लोकमें कहा गया है—

ईहा यस्य हरेवस्त्ये कर्मणा मनसा गिरा ।
निखिलाब्ध्यवस्थायु जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥

अर्थात् कर्मसे, मनसे, वचनसे एवं सभी प्रकारकी अवस्थाओंमें भी जिनकी एकमात्र आकांक्षा श्रीहरिदास्य है, वे जीवन्मुक्त कहलाते हैं।

'कृष्णके प्रति मति हो'—यही आशीर्वाद ही साधुलोग दिया करते हैं। 'कृष्णके प्रति मति नष्ट होकर कृष्णोत्तर वस्तुके प्रभु हो'—ऐसा आशीर्वाद साधुओंका आशीर्वाद नहीं है।

'कृष्ण' शब्दके बिना अन्यत्र 'भक्ति' शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता। कृष्ण ही एकमात्र

भक्तिके विषय हैं। ब्रह्म ज्ञानके वस्तु हैं, परमात्मा सान्निध्य (निकटता) के वस्तु हैं, किन्तु कृष्ण ही एकमात्र सेव्य वस्तु हैं। हम दूसरे किसी अवसरमें आलोचना कर यह दिखलायेंगे कि किस प्रकार कृष्ण ही एकमात्र सेव्य वस्तु हैं।

हमारे पहले दिवसकी आलोचनाके विषय—चित् एवं अचित् के विश्लेषणद्वारा ज्ञान-प्राप्तिके भण्डार, ज्ञान-प्राप्तिके यन्त्र, ज्ञान-प्राप्तिका सिद्धान्त, ज्ञान प्राप्तिकी संगति एवं ज्ञान-प्राप्तिकी धारणा आदि थे। 'चित्' शब्द का साधारण अर्थ है—ज्ञान। ज्ञान—कर्त्त्व-धर्मयुक्त है। श्रीचेतन्य महाप्रभुकी भाषणमें कहा गया है—“अद्वयज्ञान-तत्त्व व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन।” सम्बूद्ध शक्तिके अधिष्ठातृ विग्रह ही श्रीकृष्णचन्द्रजी है। इस ज्ञान-प्राप्तिके आकर (आधार या उत्पत्तिस्थान) तीन प्रकारके हैं—चेतनाग्रार, चित् एवं अचित् मिश्र आधार तथा अचित् आधार। प्रत्यक्षवादियोंका कहना है कि अचित्से ही चित् या ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। ये लोग अचिन्मात्रवादी हैं। ऐसा विचार जिस वृत्ति में उत्पन्न हो, उसे तक कहा जाता है। जो व्यक्ति अचित् से चेतनको जन्म प्रहण कराना चाहते हैं, उस चेतनको क्रमशः किस प्रकार neutralise (तटस्थ) किया जा सकता है, किस प्रकार cfarvise (उन्नत) किया जा सकता है, यह उनका विचार होता है। वे लोग तपस्याके द्वारा क्रमशः उनकी तात्कालिक चेतनताको अचेतनतामें परिणत करना चाहते हैं। प्रचुर परिमाणमें कर्म करते करते अत्यन्त

क्लान्त एवं परिश्रान्त हो पड़नेपर ऐसे अनुभूतिरहित अचित् होनेकी सृष्टा या निर्वाण मुक्तिके लिए लालमा उत्पन्न होती है। 'दानशीर्ख होना अच्छा है, लोगोंकी सेवा-शुश्रवा करना अच्छा है'—अचित् राज्यमें वीसे जानेपर सामग्रिक शान्तिके लिए ऐसी धारणा हमारी बुद्धि या विचार-शक्तिको प्रलूब्ध करता है। बाहरी जगत्के आकर्षणमें आकृष्ट होकर हम सत्कर्मी, पुण्यवान्, धार्मिक, नैतिक होते हैं या कभी हम असत्कर्मी, पापी अधार्मिक, अनैतिक हो पड़ते हैं। बाहरी जगत्के आकर्षणद्वारा इस प्रकार चान्ति होते हैं।

सूक्ष्ममें स्थूलता नहीं है, किन्तु स्थूलका जन्म सूक्ष्मसे हुआ। बाहरी जगत्की स्थूल वस्तुमें भाव आकर्षण कर सूक्ष्मता प्रकाशित होती है। इस सूक्ष्म भावका जनक-स्थूल विषय है।

इस जगत्में चेतन वृत्तिके साथ अचेतन वृत्ति बहुत कुछ परिमाणमें मिली हुई है। अचिद् राज्यसे ज्ञान-संग्रह करनेमें मन एवं बुद्धि नियुक्त हैं। जहाँ परमाणुवादी या जड़-शक्तिके अचित् की बात नहीं है, जहाँ किसी प्रकारके अचेतनकी बात नहीं है, वहाँ केवल चित् है। कोई कोई कहते हैं कि केवल-चेतनमें निःशक्तिक अनुभूति रहेगी। प्राकृत या स्थूल ज्ञानी लोगोंने जगत्में जड़शक्तिका जो कुछ वा अनुभव प्राप्त किया था, उससे दूर भागनके लिए चंद्रा करनेपर, उस समय अपनी प्राप्त चेतनताको निःशक्तिक करनेकी एक चेष्टारूपी उपायका उद्दय हुआ। जिस गौड़ाय वर्षणव-

भाषामें बहिरङ्गा शक्ति कहते हैं, उस बहिरङ्गा शक्ति रहित वस्तुको निर्भेद जानी लोग 'ब्रह्म' कहना चाहते हैं। उन लोगोंने Radio Activity (अणु-परमाणुकी किया) एवं Molecular theory (परमाणुवाद) से जिस शक्तिका परिचय पाया है, त्विद अचिद् निश्च जात से जिस शक्तिका परिचय पाया है, उस शक्ति का खण्डन कर ब्रह्मकी कल्पना करते हैं। किन्तु जो व्यक्ति बृहत् वस्तुकी सम्पूर्णता देख पाते हैं, वे लोग 'ब्रह्म' शब्दसे भगवान्को ही जानते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी भाषामें—
‘ब्रह्म’ शब्दे मुख्य अर्थे कहे ‘भगवान्’।

सांकषण-सूत्रमें 'ब्रह्म' शब्दद्वारा विष्णु को ही कहा गया है। भागवतके अन्तमें एक इलोक देख पाते हैं—

सर्ववेदान्तसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।
वस्त्वद्वितीयं तत्रिष्ठं केवल्यैकप्रयोजनम् ॥

अर्थात् श्रीमद्भागवतमें समस्त वेदान्तका सारभाग बणित है। यह आत्मैकत्व स्वरूप ब्रह्मवस्तु विषयक या भगवद् विषयक है तथा कैवल्य या विशुद्ध भक्ति रूप एकमात्र फलजनक है।

प्रत्येक शब्दकी दो वृत्तियाँ हैं—विद्वत् रूढ़ि वृत्ति या मुख्यतम् वृत्ति एवं अज्ञ रूढ़ि वृत्ति या गौण वृत्ति। जिस शब्दकी वृत्ति कृष्ण विष्णु, श्रीचैतन्यदेवसे भिन्न होकर और कुछ को उद्देश्य करें, वह शब्दकी अविद्वत् या अज्ञ रूढ़ि वृत्ति है। विद्वत्-रूढिमें सभी शब्द ही कृष्ण-बाचक हैं कृष्णोददेशक हैं। जो सभी शब्द हमारी नौकरी करते हैं, हमारे घोगोंके

कायोंको चलाते हैं, वे सभी भोगसाधक शब्द भगवद्वस्तुसे पृथक् होकर अविद्वत् रूढ़ि वृत्ति का प्रकाश करते हैं। 'कृष्ण' शब्दसे जो तत्त्वद्वस्तु उद्दिष्ट होते हैं—गुणजात जगतमें हुए शब्दकी जो व्याख्या की जाती है, 'कृष्ण' शब्दद्वारा जनसाधारण जो समझते हैं, वह 'कृष्ण' शब्दका उद्दिष्ट विषय नहीं है। भाषांतर में God' 'अङ्ग' आदि शब्द, यहाँ तक कि संस्कृत भाषाके 'ईश्वर', 'परमात्मा' आदि शब्द कृष्णसे मिश्रित एक मह या तेजःपुञ्जजके बाचकमात्र हैं। इन शब्दोंद्वारा 'कृष्ण' शब्दका परिपूर्णतम अर्थ प्रकाशित नहीं होता। कृष्ण शब्दका अर्थ इस फ्लोकमें है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिगोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

अर्थात् सत्, चित् एवं आनन्दघन विग्रह श्रीकृष्ण ही परम ईश्वर हैं। वे स्वयंरूप, अनादि सभी विष्णु एवं वंशजातत्वके आदि एवं सभी कारणोंके भी कारण हैं।

यह अर्थं श्रीचैतन्य महाप्रभुने दक्षिण देश से संग्रह कर प्रचार किया था। दूसरे देशोंकी बात क्या, इस भारतवर्षमें भी जिस चिन्तास्त्रोनमें ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म आदि शब्द प्रकाशित हैं, वह केवल कृष्ण शब्दकी गौणी-शक्ति या निःशक्तिक विचारका व्यञ्जक है। वे कृष्ण शब्दकी परिपूर्णता व्यक्त नहीं करते। हमारा इन्द्रियजात ज्ञान जिन वस्तुओंको देखता है, सुनता है व्राण, आस्वादन या स्पर्श करता है, वे प्रकृतिसे उत्पन्न वस्तुविशेष हैं। इन सभी प्रकृतिसे उत्पन्न वस्तुको लक्ष्य

कर 'कृष्ण'-शब्दका प्रयोग नहीं हुआ है। वस्तु है।

कृष्णवस्तु जड़ेन्द्रिय या निरिन्द्रिय ज्ञानके द्वारा
जाने नहीं जा सकते, वे अतीन्द्रिय, अप्राकृत

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद
श्रील सरस्वती ठाकुर



प्रश्नोत्तर (श्रीचैतन्य शिक्षा)

१—श्रीमद्भागवत्की शिक्षाका गुरुत्व या महत्ता कितना है? उनके द्वारा उपर्युक्त सभी तत्त्व किम उपायसे शिक्षणीय हैं?

"श्रीमद्भागवत्की शिक्षाएँ—गूढ़ एवं वैज्ञानिक तत्त्व—थोड़ा विशेष ध्यान देकर न पढ़नेसे बोधगम्य नहीं होते। आजकाल बहुतसे व्यक्ति आहारादि कर शयन करते हुए उपस्थ्यास ग्रन्थ पढ़ते हैं। वे सभी प्रबन्ध उसे प्रकार पाठ करनेसे नहीं चलेगा। ये सभी शिक्षाएँ ही वेद-वेदान्त-शास्त्रोंके गूढ़ तत्त्व हैं। शद्वाके साथ विशेष मनःसंयोगपूर्वक दूसरे-दूसरे साधुओंके साथ समालोचना करते हुए धीरे-धीरे पाठ करनेसे ही ये सभी तत्त्व हृदयंगम हो वाकते हैं।"

—श्री म० शि० १५ १०

२—श्रीचैतन्य-शिक्षा किस किस आकार में व्यक्त हुई है?

"श्रीगीरचन्द्रका साक्षात् उपदेश यह है वेद शास्त्र प्रमाण स्वरूप होकर जीवोंको नो प्रकार की शिक्षा देते हैं। वे प्रमेय इस प्रकार हैं—(१) इस विश्वमें श्रीहरि ही एकमात्र परम तत्त्व है, (२) वे सर्वशक्ति विशिष्ट हैं, (३) वे रभ पमुद्र हैं, (४) जीव उनके विभिन्नांश हैं, (५) कुछ जीव प्रकृति द्वारा ग्रस्त हैं, (६) कुछ जीव भाव-बलसे प्रकृतिसे मुक्त हैं, (७) यह चिदचिद सारा विश्व ही श्रीहरिका भेदभेद प्रकाश है, (८) गुद्ध भक्ति ही साधन है एवं (९) श्रीहरि प्रेम ही साध्य वस्तु है।"

—गौ० स्मरण स्तोत्र ७५

३—भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध एवं रसाभास की श्रीमद्भागवत्जीने निश्चय क्यों की है?

"अचिन्त्य भेदभेद ही भक्तिसिद्धान्त है। इसके विरुद्ध जो हैं, वे ही (१) भक्तिसिद्धान्त विरुद्ध एवं (२) रसाभास अर्थात् रस

की तरह जान पड़ने पर भी रस नहीं है। इन दो प्रकारकी वस्तुओंमें वैष्णवोंको दूर रहना होगा। क्योंकि मायावादादि भक्ति-विद्वान्त विशुद्ध वाक्य सुनते-सुनते जीवोंका पतन होता है। रसाभास आलोचना करने जाकर महजिया, बाउल, जड़रमायकन आदि हो पड़ते हैं। इस दोषमें जो व्यक्ति दूषित हैं, उनके संगका निषेध करनेके लिए श्रीचंतन्य महाप्रभुने भक्तिसिद्धान्त विशुद्ध एवं रसाभासको दूर रखनेकी रीति शिक्षा दी है।"

—अ० प्र० भा० म० १०११३

५—श्रीचंतन्य महाप्रभुने क्या किमी प्रकारकी दुर्लभिका अनुमोदन किया है?

"Mahaprabhu tells that a man should earn money in a right way and sincere dealings with others and their masters; but should not immorally gain it. When Gopinath patnaik, one of the brothers of Ramananda Rai, was being punished by the Raja of Orissa for immoral gains, Shri Chaitanya warned all who attended upon him to be moral in their worldly dealings."

—Chaitanya Mahaprabhu's Life & Precepts.

अथात् श्रीचंतन्य महाप्रभुने कहा है कि मनुष्यको धार्मिक उपायसे अर्थोपायजन्म करना होगा एवं अपने स्वामियोंके साथ निष्कपट व्यवहार करना चाहिए। श्रीरामानन्द रायके एक भाई गोपीनाथ पट्टनायकको जब उड़ीसा

के राजाने अन्यायपूरण कमाईके लिए दण्ड दिया था, तब श्रीचंतन्य महाप्रभुने अपने सभी सेवकोंको सावधान किया था कि वे अपने सांसारिक व्यवहारमें न्यायपूरण हों।

५—श्रीमन्महाप्रभुजीने अपने आचरण द्वारा गहन्योंके कल्याणके यम्बन्धमें क्या शिक्षा दी है?

"In His own early life, He has taught the grihastas to give all sorts of help to the ready and helpless and has shown that it is necessary for one who has power to do it, to help the education of the people specially the Brahmins, Who are expected to study the higher subjects of human knowledges."

—Chaitanya Mahaprabhu's Life and Precepts.

अर्थात् अपने आदि जीवनमें उन्होंने गहन्योंको यह शिक्षा दी है कि उन्हें दीन एवं निःसहाय व्यक्तियों को हर तरहकी महायता देना चाहिए एवं जिस व्यक्तिमें ऐसा करनेका सामर्थ्य है, उनके लिए आवश्यक है कि वे दूसरोंकी शिक्षामें, विशेषकर ब्राह्मणोंकी, जो मानव ज्ञानके उत्तरत्तर विषयोंका अध्ययन करनेके लिए अपेक्षित हैं, अवश्य सहायता करें।

६—श्रीचंतन्यदेवके आचार-प्रचार एवं शिक्षामें क्या कोई श्रुटि है?

"Shri Chaitanya as a teacher has

taught man both by precepts and by his holy life. There scarcely a spot in His life, which may be made the subject of criticism. His Sanyas, His severity to junior Haridas and such like other acts have been questioned as wrong by certain persons. But as far as we understand, we think as all other independent men would think, that those men have been led by a hasty conclusion or party spirit."

—Chaitanya Mahaprabhu's Life and Precepts.

अथवि श्रीचेतन्य महाप्रभुने मनुष्योंको अपने पवित्रतम जीवन एवं विचारों—दोनों से शिक्षा दी है। उनके जीवनमें ऐसा कोई स्थल नहीं है, जिसे कि हम दोष हूँडनेका विषय बना सके। उनका संन्यास, छोटे हृरिदासके प्रति उनका कठोर शासन एवं दूसरे ऐसे कार्योंको कुछ व्यक्तियोंने गलत मानित करनेकी चेष्टा की है। परन्तु जहाँ तक हम समझते हैं या सोचते हैं एवं दूसरे सभी स्वाधीन मनुष्य जैसा विचार करेंगे, उसके अनुसार गलती निकालनेवाले मनुष्य जल्दवाजीके निराय एवं पक्षपाती भावनाके द्वारा प्रेरित हैं।

७—श्री चेतन्य महाप्रभुने कौनसे ग्रंथको वेदान्त भाष्य रूपसे ग्रहण किया है एवं क्या तत्व शिक्षा दी है?

"श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—एकमात्र

प्रणव ही महावाक्य है। उसमें जो अर्थ है, वह उपनिषदोंमें उज्ज्वल रूपसे वत्तमान है। उपनिषद् जो शिक्षा देते हैं, वह श्रीब्यास-सूत्र द्वारा सम्पूर्ण रूपसे अनुमोदित है। श्रीब्यास-सूत्रका भाष्य ही श्रीमद्भागवत है। श्रीब्यास-सूत्रके प्रथममें ही 'जन्मात्मस्य यतः'—इस सूत्र में परिणामवादको ही सत्य कहकर शिक्षा दी गई है एवं श्रीमद्भागवतमें भी वही अर्थ ही प्रतिपादन किया गया है। परिणामवाद द्वारा ब्रह्म विकारी हो जायेगे, ऐसो आशङ्का कर श्रीशंकराचार्यजीने विवर्तवाद स्थापन किया है। वस्तुनः ब्रह्म-विवर्त ही सभी दोषोंका मूल एवं परिणामवाद ही सर्वशः रूपसम्मत विशुद्ध सत्य तत्त्व है।"

—चै० शि० १५

—श्रीमन्महाप्रभुजीकी शिक्षामें मूल जानने योग्य विषय क्या है?

"श्रीमन्महाप्रभुजीकी मूल शिक्षा यही है हि कृष्णप्रेम ही जीवोंका नित्य धर्म धन है। उस धर्मधनसे जीव कदापि विच्छयुत नहीं हो सकते। किन्तु कृष्ण-विस्मृतिके कारण यायासे मोहित होकर दूसरे विषयोंमें अनुराग होनेके कारण कमशः वह धर्मं गुपत्राय होकर जीवात्मा के अन्तर-कोषमें द्विपा हुआ है। इसलिए जीवात्माको यंसार दुःख है। पुनः सोभाग्य-घटना-क्रमसे जीव यदि मैं नित्य कृष्णदास हूँ—यह बात स्मरण करे, तो वह धर्मं पुनः उदित होकर जीवोंको अवश्य यथार्थ स्वास्थ्य या ज्ञानित प्रदान करेगा।"

—चै० शि० १२

६—श्रीमन्महाप्रभुकी चरम-शिक्षा क्या है ?

“श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि जो व्यक्ति श्रद्धायुक्त होकर व्रजरस वरण्णन परे या अवण करें, वे शीघ्र ही पराभक्तिरूपा प्रेम प्राप्त कर एवं जड़के कारण उत्पन्न हृदयरोग

रूप कामसे मुक्ति प्राप्त करते हैं। यही श्रीमन्-चंतन्य महाप्रभुकी चरम शिक्षा है।”

—चौ० शिक्षा ११३

—जगद्गुरु ३० विष्णुपाद

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर



जीवोंका परम श्रेयः

[परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ३० विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा प्रदत्त भाषणका समेत]

मनुष्य जन्ममें परम मंगल प्राप्त करना ही जीवोंका एकमात्र कर्त्तव्य है। किन्तु उस मंगल-प्राप्तिका यथार्थ पथ निरूपण करना ही आजकल कठिन हो पड़ा है। यथार्थ मंगलका पथ क्या है, उस विषयमें विचार करना आवश्यक है। साधारण बहु जीव अमंगलको मंगल एवं मञ्जूलको अमंगल समझते हैं। नकली सोना यथार्थ सोना नहीं है। यथार्थ सोना पाना हो, तो जिस प्रकार सोनेके विषय में जाननेवाले व्यक्तियोंका आश्रय ग्रहण करना कर्त्तव्य है, उसी प्रकार यथार्थ मंगल प्राप्तिके इच्छुक व्यक्ति गुरुपादपद्यका आश्रय ग्रहण करेंगे। गुरुपद ही एकमात्र मंगल है। उसके बिना मंगल नहीं हो सकता। हम पाठ्याला, विद्यालय, महाविद्यालय, समाज

एवं जहाँ-तहाँ बहुतसे गुरु किया करते हैं, किन्तु वे सभी यथार्थ गुरुपद वाच्य नहीं हैं। जगतिक वस्तुमें जागतिक गुरुकी आवश्यकता है। किन्तु जागतिक वस्तु अमंगलजनक है। भगवान्की आराधनाके बिना दूसरे पथमें मग्न नहीं है। इसे प्राप्त करना हो, तो यथार्थ गुरुके पास जाना परमावश्यक है।

जीव कर्मपार्गमें विचरण कर कदापि सुख प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु, विपरीत फल दुःख ही प्राप्त करता है। वेदान्त-सूत्र का वचन है— “कृतात्येऽनुशयवान् हृष्टसृतिभ्याम्” । श्रीमद्भगवद्गीताका कहना है—“क्षीणेऽप्यै मत्यंलोकं विशन्ति” । श्रीमद्भागवतका वचन है—“एवं लोकं परं विद्यानश्वरं कर्मनिमितम्” । इन सब

जाग्रत्वाक्योद्वारा शास्त्रकारोंने सर्वत्र ही कमंमार्गमें विचरण करनेके लिए मना किया है।

धर्म-याजन करना सभीका ही सभी ममय परम कर्त्तव्य है—यह बात परम सत्य है। धर्मका परित्यागकर सभी कार्य आदि ही अहितकर हैं। धर्म ही सभी कर्मोंमें सफलता प्राप्त कराता है।

आचार्य श्रीशंकरपादका "सोऽहम्" (अर्थात् मैं वही हूँ) —यह विचार समाजके लिए अहितकारी है। 'मैं ही भगवान् हूँ'—इस चिन्ताके द्वारा पिताके प्रति पुत्रकी अमर्यादा, शिक्षकके प्रति छात्रकी अवज्ञा, गुरुजनोंके प्रति लघु व्यक्तियोंकी अवहेलना प्रकाशित होकर आज समाज विश्रृङ्खल हो गया है। समाजमें कोई भी गुरुजनोंमें गुरुबुद्धि नहीं करता। 'सोऽहम्' विचारकी प्रबन्धता ही इसका मूल कारण है। 'सोऽहम्' वाक्यका यथार्थ तात्पर्य है—मैं जीवात्मा हूँ, सच्चिदानन्द वस्तु भगवान् का कणमात्र हूँ अर्थात् उनके गुणकणोंमें सम्पन्न हूँ।

श्रीचंतन्य महाप्रभुके 'तृणादपि' श्रोकर्में 'सोऽहम्' वाक्यका यथार्थ अर्थ प्रकाशित हुआ है। 'सोऽहम्' वेदवाक्य—स्वयं भगवान् से प्रकटित है। उसी प्रकार 'तृणादपि सुनीच' वाक्य भी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचंतन्य महाप्रभुसे प्रकाशित है। अब एवं दोनों ही वाक्य एक तात्पर्ययुक्त एवं समान गोरवयुक्त हैं। एक गोले या वृत्तकी परिघिकी प्रथम विन्दु से चलकर क्रमशः अप्रसर होकर आखिरी

विन्दुकी ओर आनेपर 'तृणादपि' भाव एवं 'सोऽहम्' भाव एक ही स्थानमें अवस्थित होकर बाधारहित हो पड़ते हैं।

'तृणादपि सुनीच' भावके द्वारा जागरित्क दुर्बलता नहीं समझना चाहिए। परन्तु इसके द्वारा सर्वोदय शक्तिको प्राप्त किया जा सकता है। महात्मा गांधी आदिने 'तृणादपि सुनीच' का एक कणापात्र आश्रय कर परे भारतवर्ष को स्वाधीन किया है। श्रीचंतन्य महाप्रभुके अनुगत गौडीय वेदान्त संख्यामें सारे भरतकी तुलनामें अत्यन्त घोड़े हैं। कोई-कोई प्रदेशिक धर्मविद्वेषी पाषण्डी व्यक्ति कहा करते हैं कि गौडीय वैष्णवोंद्वारा भारतवर्ष प्राधीन हुआ है। ऐसा विचार नब प्रकारसे युक्तिरहित एवं विद्वप्पूर्ण है। परन्तु जिन लोगोंने श्रीचंतन्य-महाप्रभुका विचार प्रहण नहीं किया है, उन लोगोंकी संख्या ही अत्यन्त अधिक है। इसलिए वे ही लोग सब प्रकारसे भारतकी पराधीनताके कारण हैं। श्रीचंतन्य महाप्रभुकी यह शिक्षा यदि सभी व्यक्ति प्रहण करते, तो बहुत पहले ही भारतवर्ष स्वाधीन हो जाता। महात्मा गांधीनी अहिंसा-नीति एवं Non-Violence ही 'तृणादपि सुनीच' एवं 'तरोरपि सहिष्णु' वाक्यके शिक्षाकरण हैं, जिनकेद्वारा भारतन आज स्वाधीनता प्राप्त की है।

शास्त्रोंमें सर्वत्र ही भक्तिकी श्रेष्ठता वर्णन की गई है। ज्ञान श्रेष्ठ वस्तु नहीं है। धर्म-जगत्के बानक व्यक्ति ही अद्वैत-विचार या निर्दिशेष ज्ञान-नागमें विचरण करते हैं। पाश्रवत्य दार्शनिक व्यक्ति भी कहते हैं—

Indians are born philosophers अर्थात् भारतवासी जन्मगत ज्ञानी हैं। अतएव वह बालकोंका धर्म राष्ट्र है। जो व्यक्ति श्रीचंतन्य महाप्रभुकी शिक्षाकी भली प्रकारमें आलोचना नहीं कर पाये हैं, वे ही अद्वैतवादकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु भक्ति ही सर्वोत्तम है।

भक्तिधर्म सहज या स्वाभाविक है। 'सहज' शब्दके द्वारा साधारण साहित्यकार जो समझते हैं, वह उसका यथार्थ अर्थ नहीं है। 'सहज' कहनेसे आत्माके साथ साथ जो वृत्ति जन्म ग्रहण करती है। अर्थात् भक्ति ही आत्माका नित्य सहचर है। जान एवं कर्म मन एवं देहके धर्म होनेके कारण उनके द्वारा चिनका मैल कुछ परिमाणमें शोधित होकर सत्संग-प्रभावसे भक्ति प्राप्त करनेमें सहायता करते हैं। भगवान्के साथ लीन या एक होना असंभव है। भगवान्के साथ कोई मिलकर लीन हो गये हैं, ऐसा हृष्टान्त कहीं भी नहीं है। परन्तु मुक्तिके पश्चात् भी पृथक् पृथक् सत्ता रक्षित होकर भगवानका भजन नित्य काल चल रहा है, यही सर्वत्र देखा जाता है। यथा "मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते"—इत्यादि। मुक्तिके पश्चात् भगवान्के साथ एक होनेकी धारणा, धर्मजगत्में प्रचलित कुछ Common errors (साधारण भूलों) में से एक है।

श्रीचंतन्य महाप्रभुने बंगालमें आविश्वृत होकर धर्मजगत्के सर्वश्रेष्ठ विषयको इस देशमें ही प्रकाश किया है। क्योंकि बंगालके व्यक्ति भारतमें श्रेष्ठ बुद्धिमान माने जाते हैं।

कई विषयोंमें दूसरे प्रान्त बंगालकी अपेक्षा करते हैं। दक्षिणात्य-देश भ्रमण करते हमने यह बात अनुभव की थी। किन्तु दुःखकी बात यही है कि बंगालके साधारण अधिवासी श्रीचंतन्य महाप्रभुके इस सर्वश्रेष्ठ दानके विषयमें उदासीन हैं। कोई कोई यह भी धारणा कर बैठे हैं कि यह सर्वश्रेष्ठ शिक्षा निम्नश्रेणी के व्यक्तियों तक ही सीमित है। किन्तु यह ठीक नहीं है। श्रीचंतन्य महाप्रभुके धर्म-सम्बन्धी गृह्यतम सर्वोच्च विचार उच्च शिक्षित संभ्रान्त व्यक्तियोंमें व्याप्त है। किन्तु उनकी संख्या घोड़ी है। उसका यथार्थ प्रचार न होने के कारण इसकी ऐसी अवस्था है।

पहले बहुतमें व्यक्ति कहते थे कि स्वाधीन न होने पर धर्मकी आलोचना नहीं हो सकती। अच्छा, देखा जाय, आज जो देश स्वाधीन है, वह क्या धर्मपरायण है? भारतीय हिन्दुस्थान एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र है। 'धर्म-निरपेक्ष' का अर्थ धर्म सम्बन्धमें उदासीन—ऐसा नहीं। परन्तु हिन्दुस्थानमें मुग्नतमान, ईसाई, हिन्दु आदि जो भी धर्म हैं, हिन्दुस्थान उनके किसीके ऊपर भी दूसरे धर्म ग्रहण करने के लिये जोर-जबदंस्ती नहीं करता। सहनशोलता ही भारतका गौरव है। अमहनशोलता ही धर्मका कारण है।

भारतवर्ष अभी भी यथार्थ स्वाधीनका प्राप्त नहीं कर सका। क्योंकि भारतवर्ष अब भी पाश्चात्य विज्ञानाचारोंके द्वारा अनुप्राणित नियमावली एवं शासन-रद्धति द्वारा शासित हो रहा है। स्वायत्त्व या स्वाधीन शासन तभी

समव है, जब देशक ज्ञानीश्रेष्ठ—गनु, पराशर, याज्ञवल्क्य, व्यास आदि ऋषियोंकी राजनीतिक शिक्षा एवं चिन्ताधारा द्वारा शासन कायं परिचालित हो। हमारे प्राचीन ऋषियों की राजनीतिक शिक्षा एवं चिन्ताधारा सारे पृथ्वीकी शिक्षा एवं चिन्ताधारा की अपेक्षा उभने एवं श्रेष्ठ है। संस्कृत-शिक्षाके अभावसे हमारे वत्तमान शासक लोग इनका अनुशीलन नहीं कर पा रहे हैं। पाश्चात्य देशोंमें हमारे

प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थोंका प्रचुर आदर होकर उनके अनुयार राजनीति एवं विज्ञान आदि संगठन वा चेष्टा देखी जारही है। फिनु प्रकृत गठनमूलक चित्तवृत्ति क्रमशः उन्हें आमुरिक भावापन्न कर भारतीय विज्ञानसे दूर रखी हुई है। एकदिन भारतवर्ष अवश्य ही घमके प्रभावसे सारे पृथिवीका आदर्शस्वरूप होकर ही रहेगा।



संस्कृत भाषाका श्रेष्ठत्व

भाषा भावकी अभिव्यक्ति है। नना प्रकारकी लेखन-प्रणालीद्वारा इसका प्रकाश होता है। मूक व्यक्तिके निकट स्वर आदिवा विकाश न होनेपर भी अंग-भङ्गी ही वहाँ भावका प्रकाशक है। पृथिवीके अधिकांश स्थलवे कुछ भावोंका विकास बिना लेखन प्रणालीके द्वारे प्रवा से प्राप्ति होते देखा जाता है। हास्यकी प्रक्रिया, रोदन, उल्लास, भीति आदिकी अभिव्यक्ति सर्वत्र ही एक ही प्रकारसे देखी जाती है। जिस किसी प्रक्रियाद्वारा ही भावकी अभिव्यक्ति क्यों न हो, वह ही, वैखरी आदि लेखन-प्रणालीके द्वारा जो अक्षरात्मक अभिव्यक्ति प्रकाश पाती है, वही भाषा कहलाती है।

देश,काल, पात्रके भेदसे भाषाका पार्थक्य है। कीट-पतंग, पशु-पक्षी, वृक्ष-लतादिकी भी भाषा हमारे अनुसंधानका विषय है। भाषात्मविद् व्यक्ति, पशुतत्व आलोचक व्यक्ति एवं वैज्ञानिक लोगोंने सभी ही भाषात्मव आलोचना करने जाकर अपनो अपनी चित्तवृत्तिके अनुसार ही विचार किया है। पार्वजनिक एवं सर्वंहीव-तत्त्ववो भाषाकी जीवनी शक्तिकी पर्यालोचना करना हो, तो किस प्रकार मानदण्ड लेना होगा, यह विचारणीय विषय है। कीट-पतंगादि, ब्रह्मा तक देवता, मनुष्य, दानव, स्तम्भ सभीके ही वैशिष्ट्यपूर्ण चेतनके विकास स्वरूप भाव-भाषादि वत्तमान हैं, उनमें परस्पर बाहरी रूपसे जिस प्रकार

पार्थक्य देखा जाता है, उसी प्रकार भाव एवं भाषा का पार्थक्य वत्तमान है।

समग्र भारत एवं भारत को छोड़कर दूसरे सभी देशोंमें ही चेतन धर्मके वैशिष्ट्यकी बात स्वीकारकी गई है। प्रत्येक चेतन ही एक धर्ममें अवस्थित होने पर भी वे विभिन्नाश हैं। एक अणुचेतन दूसरे अणुचेतनके साथ भावका आदान-प्रदान किया करता है, यह आदान-प्रदान-प्रणाली है। भाषा कहलाती है। कीटानुकीटके भौतर वत्तमान अणु चेतन, वृक्षनता एवं पगु-पक्षी आदिके भौतर वत्तमान अणुचेतन परस्पर एक दूसरेके साथ भाव-विनिमय करते हैं। किन्तु एक जातिने दूसरी जातिके भाव-विनिमयकी प्रणालीके साथ भेद स्थापन किया है। यह भेद प्रत्येक जीवके अन्दर वत्तमान अणुचेतनका नहीं है। क्योंकि यह सबवादी सम्मत है कि चेतनतामें किसीका भी कोई पार्थक्य नहीं है। अर्थात् जीवात्मा स्वरूपसे विभिन्नांश रूपमें एक ही है—यही सभी आस्तिकोंका विचार है। विभिन्नांश अणुचेतन्य जीवात्मा अणुत्व एवं धर्ममें एक होनेपर उसकी भाषा एवं भाव पृथक् होनेका कोई युक्तिसंगत कारण नहीं है। हम ममाजगत या देशगत सभीग अवस्थानमें भाषागत समानता देख पाते हैं। अतएव भाषा का पार्थक्य, विभिन्नांश अणुचेतन्य जीवका स्वभावगत नहीं है। भगवान्‌की मायाशक्ति द्वारा विरचित देश-काल-पात्र आदिके आवरणसे उत्पन्न भाषा का ही पार्थक्य वत्तमान है।

एक जातिके विभिन्न आत्माकी भाव

विभिन्नता स्वीकृत है। भाषाकी विभिन्नता न रहनेपर भी वैशिष्ट्य है। एक ही भाषाका गुरुत्व-लघुत्व, लालित्य-काठिन्य आदि पार्थक्य देखे जाने पर भी भाषागत भेद नहीं है। तथापि उसे वैशिष्ट्य कहनेमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं रह सकती। परन्तु वैशिष्ट्य ही भेदका कारण है। अणु-चेतनकी भाषाका वैशिष्ट्य रहनेपर भी यह न समझना होगा कि प्रत्येक जीवात्मामें स्वरूप गठनके आत्म-वैशिष्ट्यको छोड़कर दूसरे प्रकारका भेद है। जो व्यक्ति जीवात्माके वैशिष्ट्य अस्वीकार करनेकी चेष्टा करते हैं, उनकी भाषा एवं भाव सब कुछ भी मिथ्या हो पड़ते हैं। हम भाषा-तत्त्व आलोचना करने जाकर ऐसी 'व्यवहारिकता' एवं 'मिथ्या' को स्थान देने के लिए तेयार नहीं हैं।

आत्मा दिव्य वस्तु होनेके कारण आत्मा के भाव एवं भाषा भी दिव्य वस्तु हैं अर्थात् देव-भाव सम्पन्न है। इसलिए अस्तनाकी भाषा दिव्य एवं दैत्य है। आत्म-तत्त्वके अनुशीलनमें जो व्यक्ति जितने उन्नत हैं, उसी परिमाणमें उनके भाव एवं भाषा भी उन्नत है। जो देश जितना ही निम्नगामी होकर उलता है, उस देशके भाव एवं भाषा उन्ने ही परिमाणमें निम्नगामी होती हैं। चिन्ताधाराकी असम्पूर्णता ही भाषाकी असम्पूर्णता उत्पन्न करनी है। दिव्य वस्तु या भाव जिनके द्वारा अभैव्यक्त हो, वह भी दिव्य एवं सम्पूर्ण है। वह जितना ही विस्तृत या संक्षेप से भी संझेपतर एवं संक्षेपतम् क्यों न हो, वह पूर्ण तथा दिव्य है। हन चारों वेदोंको अति

विस्तृत देखनेपर भी उपनिषदादि उनसे बहुत ही संक्षेप हैं। उपनिषद्, पुराण, इतिहासादि विराट् देखे जानेपर भी सूत्राकारमें 'ब्रह्म-मूत्र' बहुत ही संक्षिप्त है। यह भी मन्त्र एवं क्रमशः बीजमें और भी संक्षिप्त देखा जाता है। 'बीज' अत्यन्त शुद्ध होने पर इसकी समग्रता एवं विराट् की सत्ता देखे जानेके कारण यह सम्पूर्ण है। वट का बीज बहुत ही नगरय होनेपर भी उसमें विराट् वृक्षकी सत्ता रहनेके कारण वह पूर्ण है। श्रीनृसिंह तापनीके द्वारा मन्त्रमें कहा गया है—“वाग्वा ओंकारो वागेवेदं सर्वं न शृणुष्वद्मिवेहास्ति।”

इस उपनिषद् के शंकर-भाष्यके रहस्याथं दीपिकामें कहा गया है—“बाङ्मात्रस्वाच्छोऽनुरस्योतत्त्वं सिद्धमित्याह वाग्वा इति सर्वं वराणीन-कवलनरूपत्वाद् वै वर्यादिरूपत्वाच्च वाङ्मात्रस्वगन्तव्यम्।”

अथात् ओंकारकी वाङ्मात्रताके कारण उसका ओतत्व अर्थात् सर्वव्यापकत्व मिछ्ह है। ओंकारद्वारा सभी पदार्थ वर्णित हैं। सभी पदार्थ ही ओंकारके अन्तर्गत एवं बैखरी वादि स्वर भी ओंकारके स्वरूप मात्र हैं। इसलिए ओंकारको वाङ्मात्र जानना होगा।

यहाँ अपीरेय वैदिक वाणीसे जान सकते हैं कि बीज-स्वरूप ओंकार (ॐ) में मभी वरण, शब्द वाव्य एवं भाषा वर्तमान हैं। वेद-पुराण-इतिहासादि इसी ओंकारके ही विस्तार हैं एवं ओर भी कहा गया है कि शब्दरूप ओंकारसे ही सृष्टि-स्थिति-प्रलयादि होते हैं। अतएव ओंकार (ॐ) यह दिक्ष्य शब्द शुद्धादिय शुद्ध होनेपर भी यह पूर्ण है एवं इसी में वस्तु एवं नत्व निहित हैं।

इमलेड, ग्रीस, जर्मनी, चीन एवं जापान आदि देशकी भाषासे हमारी भारतीय भाषा की तुलना करनेपर इसके पाठ्यक्रमका मूल कारण प्रकृति एवं प्रकृति-जात देश, काल एवं पात्र है। भारतवर्ष इस प्रकृतिजात देश, काल, पादादिसे बाहर न होनेपर भी उसने इस प्रकृति एवं प्रकृतिसे उत्पन्न चौबीस तत्त्वोंम अतीत राज्यका 'अनुशीलन किया है। पाठ्यव परमाणुके संयोगसे जिस चेतनताका आभास देखा जाय, उससे भी भारतीय मतीषियोंने अपना वैशिष्ट्य स्थापन किया है। अप्राकृत चेतन प्राकृत चेतन (?) से बहुत परिमाणमें पृथक् है। अतएव अप्राकृत अनुचेतनका आध एवं भाषा प्राकृत चेतनसे सभी प्रकारसे वैशिष्ट्य रखते हुए प्रथक् हो पड़ा है। इस वैशिष्ट्यमय भाषाका नाम 'संस्कृत भाषा' है।

'संस्कृत' शब्द द्वारा यही समझा जाता है कि भाषाने सब प्रकारसे संस्कार प्राप्त किया है। दस संस्कारोंमें मानव जिस प्रकार शुद्ध प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार 'संस्कृत भाषा' ने भी सब प्रकारसे शुद्धता प्राप्त की है। विष सद्बैद्यके द्वारा जलाए जानेपर वह प्राणनाशक न होकर प्राणरक्षक होता है। उसी प्रकार भाषागत प्राकृत मन देव-ऋषियोंद्वारा जलाये जानेके कारण देव-भाषाका नाम 'संस्कृत भाषा' है। यह भाषा अक्षर ब्रह्म-वस्तुका निर्देश करती है।

देवभाषा अर-वस्तु या विनाशशील नहीं है। यह अक्षरात्मक नित्य सनातन वस्तु है। इस अक्षरात्मक सनातन वस्तुका अनुसंधान न करनेपर हम कृपण हो पड़ते हैं।

श्रीहुहदारथ्यके ३।१।१० मन्त्रमें कहा गया है—‘एतद अक्षरं गागि अविदित्वा अस्मात् लोकात् प्रति म एव कृपणः’।

भारतवर्षं यदि अक्षर एवं ब्रह्म-वस्तुकी अनुशीलन न कर कृपणताका आश्रय ग्रहण करे, तो भारत अन्यान्य देशोंकी भाँति दुर्भाग्य का वरण करेगा। भारतकी लेखन-प्रणाली जो भी क्यों न हो, दिव्य भाषा या देव-भाषा ही अण चैतन्य जीवमात्रका भाव प्रकाशक यन्त्र-विशेष है। बाल्य-जीवनमें पांच वर्षके बालक को अक्षर-परिचय करा देनेकी पढ़ति आज भी चर्त्तीमान है। अतएव उसे शिक्षा-गुहका आश्रय ग्रहण करना होता है। हम अक्षर परिचयकी पढ़तिका सारांश परित्यागकर गतानुगतिक (गमन-आगमन) धाराके अनुसारसे शिक्षा आरम्भके समय जो आनुष्ठानिक किया अवलम्बन करते हैं, उसमें क्षरवस्तुको छोड़कर अक्षर-वस्तुका परिचय नहीं हो रहा है। हम हमारे त्रिकालज्ञ हितकामी ऋषियोंकी शिक्षा से सम्पूर्ण रूपसे विच्छुत हो पड़े हैं। अक्षर-परिचयके नामसे क्षर-परिचय लेकर ही हम चर्त्तीमान समयमें व्यस्त हो पड़े हैं। भारतीय विविध लेखन-प्रणाली जो भी क्यों न हो, अक्षर वस्तुके साथ सम्बन्ध न रहनेपर सब प्रकारसे हमें अमंगलके पथकी ओर ले जायगा।

लेखन-प्रणालीके साथ स्वर या ध्वनिका अच्छेद्य सम्बन्ध न रहनेपर वह निष्फल हो पड़ती है। ध्वनि मूलतः बायुके विलोड़नसे उत्पन्न होता है। स्कोटवादी वैयाकरणिक लोगोंने भाषागत ध्वनिके उत्पत्ति स्थान कई प्रकारसे निरूपण किया है—प्रधानरूपमें कहठ,

जिह्वा, तालु, मूढ़ी, दांत आदि। उदाहरणके लिए ‘स’ तीन प्रकारसे उच्चारित हो सकता है। तालुसे उच्चारित होनेपर तालव्य स—‘श’ है, मूढ़से बोले जानेके कारण मूढ़व्य स—‘ष’ है, दांतोंसे उच्चारित होनेपर वह दन्त्य स—‘स’ है। इसी प्रकार उच्चारण भेदसे ‘न’ भी दो प्रकारका है। दन्त्य ‘न’ दांतोंसे उच्चारित होता है, मूढ़में उच्चारित होनेपर ‘न’ ही मूढ़व्य ‘ण’ है। अतएव व्याकरणकारोंका शब्द या ध्वनि बायु विलोड़ित शब्दकी तरह अकृत ही जानना होगा। इसे हम ‘अक्षर’ शब्दकी उद्दिदष्ट वस्तु समझ नहीं सकते। अक्षर-परिचय करने जाकर शिशुओंको इस प्रकार वर्णं परिचय ही कराना होता है।

लेखन-प्रणालीकी वर्णमालाके साथ अक्षर वस्तुका कोई प्रकारका सम्बन्ध स्थापित न होनेपर उसकेद्वारा हमारे पारमाण्यिके मंगलकी कोई सम्भावना नहीं है। अतएव शास्त्रकारोंने कहा है कि वर्णमालाको सब प्रकारसे ‘संस्कृत’ कर अर्थात् उसका सभी मल विदुरित कर अथवा सद्वैश्वकी तहर जलाकर ग्रहण करनेपर हम अप्राकृत अक्षर वस्तुका संधान पायेगे। ‘वरण’ एवं ‘अक्षर’ एक वस्तु नहीं, किन्तु फिर भी सादृश्ययुक्त है। सदृशवस्तुका उपमानके साथ भेद रहनेपर भी उपमान ज्ञानमें प्रचुर महायता करती है।

अप्राकृत पश्चिमकुलवरेण्य जगदगुरु श्रीश्रीलज्जीव गोहवामीपादने उनके स्वरचित ‘श्रीहरिनामामृत व्याकरण’ के प्रारम्भमें कहा है—“नारायणात् उद्भूतोऽयं वरणकमः” अर्थात् नारायणसे ही वरणसमूहकी उत्पत्ति हुई

है। श्रीनारायण ही अक्षर ब्रह्मवस्तु है। जो वर्ण अप्राकृत विशुद्ध सत्त्व स्वरूप नारायणमे उत्पन्न है, वह प्राकृत जिह्वा या कण्ठ तालु आदि द्वारा उच्चारण नहीं होता। तथापि जो वर्णसमूह अक्षरके उद्दीपक है, वही हमारे लिए एकमात्र ग्रहण करने योग्य है। अर्थात् वर्णसमूहकी समष्टिमें शब्द एवं एक या एकसे

अधिक शब्दसमूहका अर्थ प्रकाशक समावेशसे वाक्य एवं वाक्य समष्टिसे भाषाकी उत्पत्ति होती है। नारायणसे उत्पन्न होकर जो वर्णसमूह, शब्द, वाक्य एवं भाषा प्रकाशित हुई है, हम उसे ही 'संस्कृत-भाषा' जानते हैं।

—(श्रीगौड़ीय पत्रिकासे अनूदित)

* * *

श्रीश्रीव्यास-पूजा महोत्सव

गत ३ गोविन्द, २६ माघ, ६ फरवरी, श्रीगुरुत्त्वकी विशद आलोचना की गई। तीसरे शनिवार, माघी कृष्णा तृतीयासे लेकर ५ गोविन्द दिन परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ३० विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरकी आविभवि तिथिपर उन महापुरुषका अतिमत्त्वं चरित्र, अप्राकृत शिक्षा, उनका वर्तमान जगत्को प्रदान की गई वस्तु, असामान्य व्यक्तित्व आदिपर प्रकाश डाला गया। दोपहर को पृष्ठांजलि प्रदान एवं शाम को आयोजित सभामें इन महापुरुषके सम्बन्धमें अपने हृदयकी भावन एवं प्रणाल शब्द जापन किया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें बड़े समारोहपूर्वक यह उत्सव मनाया गया है। पहले दिन परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ३० विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी शुभाविभवि तिथिमें प्रातःकाल कीतनके पश्चात् उनके अतिमत्त्वं चरित्र एवं अलीकिक जीवनी पर प्रकाश डाला गया, दोपहरको सभी गुरुसेवकोंने परमाराध्यतम श्री श्रील गुरुपादपद्मके चरणकम्लोंमें पृष्ठांजलि प्रदान की। शामको आयोजित सभामें सभी गुरुसेवकोंने परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्मकी महिमाका विशद कीतन किया। दूसरे दिन

श्रीसमितिके मूल मठ, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें यह उत्सव समितिके वर्तमान आचार्य-सभापति परमपूजनीय त्रिदंडि-स्वामी श्रीश्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराज की अध्यक्षता एवं उप-सभापति एवं संयुक्त सम्पादक परम पूजनीय श्रीश्रील भक्तिवेदान्त नारायण महाराजकी कुशल परिचालनामें विराट समारोहपूर्वक मनाया गया है।

—निजस्व संवाददाता

* * *

श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमा एवं श्रीगोर-जन्मोत्सव

पिछले वर्षों की भाँति इस वर्ष भी गत १६ फाल्गुन, ४ मार्च, रविवार से लेकर २५ फाल्गुन, ६ मार्च, शनिवार तक श्रीधाम बन्दावनाभिन्न श्रीनवद्वीप धामकी परिक्रमा एवं स्वयं भगवान् त्रेन्द्रनन्दनाभिन्न शचीनन्दन श्रीगोरहरि श्रीमन्महाप्रभुकी निखिल भुवन मंगलमयी आविभवि-तिथि महामहोत्सव श्रीगोड़ीय वेदान्त समिति के मूल मठ श्रीवेवानन्द गोड़ीय मठ, नवद्वीपमें विराट् समारोहपूर्वक सम्पन्न हुए। इस वर्ष अन्यान्य वर्षोंकी अपेक्षा यात्री अधिक थे। समिति के वत्तमान सभापति एवं आचार्य पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी परिवाजकाचार्य श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराजकी

अध्यक्षता एवं समिति के वत्तमान उप-सभापति एवं संयुक्त-सम्पादक पूज्याद त्रिदण्डिस्वामी परिवाजकाचार्य श्रीमैद भक्तिवेदान्त नारायण महाराजकी कुशल परिचालनामें समिति के सभी गहस्थ-भक्त, ब्रह्मद्वारीवर्ग एवं त्रिदण्डि संन्धासियों ने विशेष उत्सव एवं कुशलतासे सभी सेवा कार्य करते हुए इस महामहोत्सव का गोरव बढ़ाया है। विभिन्न दिनोंमें विभिन्न वक्ताओं ने अपनी ओजस्विनी वाणी एवं हरिकथा सुधा प्रवाहसे श्रोताओं एवं उपस्थित श्रद्धालु सज्जनोंको आप्यायित एवं परमानन्दित किया। महोत्सवके सभी कार्य बिना किसी बाधाके सुशृङ्खलतासे सम्पन्न हुए।

—निजस्व संबाददाता

श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें विवरण -

- (१) प्रकाशनका स्थान—श्रीकेशवजी गोड़ीय मठ, मथुरा।
- (२) प्रकाशनकी अवधि—मासिक।
- (३) मुद्रकका नाम—श्रीकुंजबिहारी ब्रह्मचारी।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (गोड़ीय बैष्णव)।
पता—श्रीकेशवजी गोड़ीय मठ, मथुरा।
- (४) प्रकाशकका नाम—श्रीकुंजबिहारी ब्रह्मचारी।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (गोड़ीय बैष्णव)।
पता—श्रीकेशवजी गोड़ीय मठ, मथुरा।

- (५) सम्पादकका नाम—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (गोड़ीय बैष्णव)।
पता—श्रीकेशवजी गोड़ीय मठ, मथुरा।
- (६) पत्रिकाका स्वत्वाधिकारी—श्रीगोड़ीय वेदान्त समितिकी तरफसे उनके बर्तमान सभापति आचार्य और नियामक त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज।

मैं, कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी वालों मेरी जानकारी में और विष्वामिके अनुसार सत्य है।

१४ मार्च १९७४

कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी